

यथा श्रीजिनमत्याख्या चक्रे सम्यक्त्वरक्षणम्। तथान्यैर्भव्यमुख्यैश्च तत्कार्यं सच्छुभश्रिये ॥२३॥
श्रीमज्जैनपदाम्बुजेषु नितरां भृङ्गी पवित्राशयासद्दृष्टिर्जिनशब्दपूर्वकमतिः शर्मप्रदा सा सती।
नानावस्त्रसुवर्णरत्ननिकरैर्देवादिभिः पूजितासद्दृष्टिर्जिनभक्तिनिश्चलमतिः कैः कैर्न संपूज्यते ॥२४॥

इति कथाकोशे अत्यक्तदर्शनाख्यानं समाप्तम्।

१०७. सम्यक्त्वप्रभावाख्यानम्

श्रीजिनं त्रिजगद्देवं नमस्कृत्य सुरार्चितम्। ब्रुवे सम्यक्त्वमाहात्म्यं चेलिनीश्रेणिकाश्रितम् ॥१॥
देशेऽत्र मगधे ख्याते पुरे राजगृहे शुभे। राजा प्रश्रेणिको राज्ञी सुप्रभा गुणमण्डिता ॥२॥
पुत्रः श्रीश्रेणिको जातस्तयोः पुत्रशिरोमणिः। धीरो वीरोतिगंभीरो दाता भोक्ता भटाग्रणीः ॥३॥
एकदा नागधर्मेण राज्ञा प्रत्यन्तवासिना। दुष्टाश्वः प्रेषितः पूर्व-वैरिणा तस्य भूपतेः ॥४॥
दुष्टस्तुरंगमः सोपि प्रेरितो नैव गच्छति। खञ्चितो याति वेगेन दुष्टानामीदृशी गतिः ॥५॥
बाह्यालीं निर्गतो राजा तेनाश्वेनैकदा मुदा। प्रश्रेणिको महाटव्यां नीतो दुष्टेन कष्टतः ॥६॥

जिस प्रकार जिनमती ने अपने सम्यक्त्व की रक्षा की, उसी तरह अन्य भव्यजनों को सुख प्राप्ति के लिए पवित्र सम्यग्दर्शन की सदा सुरक्षा करते रहना चाहिए ॥१८-२३॥

जिनेन्द्र भगवान् के चरणों में जिनमती की अचल भक्ति, उसके हृदय की पवित्रता और उसका दृढ़ विश्वास देखकर स्वर्ग के देवों ने दिव्य वस्त्राभूषणों से उसका खूब आदर-मान किया और सच भी है-सच्चे जिनभक्त सम्यग्दृष्टि की कौन पूजा नहीं करते ॥२४॥

१०७. सम्यग्दर्शन के प्रभाव की कथा

जो सारे संसार के देवाधिदेव हैं और स्वर्ग के देव जिनकी भक्ति से पूजा किया करते हैं उन जिन भगवान् को प्रणाम कर महारानी चेलना और श्रेणिक के द्वारा होने वाली सम्यक्त्व के प्रभाव की कथा लिखी जाती है ॥१॥

उपश्रेणिक मगध के राजा थे राजगृह मगध की राजधानी थी। उपश्रेणिक की रानी का नाम सुप्रभा था। श्रेणिक इसी के पुत्र थे। श्रेणिक जैसे सुन्दर थे, वैसे ही उनमें अनेक गुण भी थे। वे बुद्धिमान् थे, बड़े गम्भीर प्रकृति के थे, शूरवीर थे, दानी थे और अत्यन्त तेजस्वी थे ॥२-३॥

मगध राज्य की सीमा से लगते ही एक नागधर्म नाम के राजा का राज्य था। नागदत्त की और उपश्रेणिक की पुरानी शत्रुता चली आती थी। नागदत्त उसका बदला लेने का मौका तो सदा ही देखता रहता था, पर उस समय उपश्रेणिक के साथ कोई भारी मनमुटाव न था। वह कपट से उपश्रेणिक का मित्र बना रहता था। यही कारण था कि उसने एक बार उपश्रेणिक के लिए एक दुष्ट घोड़ा भेंट में भेजा। घोड़ा इतना दुष्ट था कि वैसे तो वह चलता ही न था और उसे जरा ही ऐड़ लगाई या लगाम खींची कि बस यह फिर हवा से बातें करने लगता था। दुष्टों की ऐसी गति ही होती है,

तत्र पल्लीपतिख्यातो यमदण्डो यमाकृतिः। विद्युन्मतिः प्रिया तस्य पुत्री च तिलकावती ॥७॥
 तां विलोक्य जगच्चेतोरजितां तिलकावतीम्। प्रश्रेणिकस्तदासक्तो नृपो याचितवांस्तदा ॥८॥
 पुत्राय तिलकावत्याः स्वराज्यं भो महीपते। दातव्यं च त्वया प्रोक्त्वा यमदण्डेन तेन वै ॥९॥
 तस्मै तां स्वसुतां दत्त्वा तिलकादिवतीं सतीम्। यत्नेन प्रेषितो भूपः पश्चाद्राजगृहं पुरम् ॥१०॥
 ततः कैश्चिद्भिः सौख्यं भुञ्जानस्य महीपते। पुत्रश्चिलातपुत्राख्यस्तस्यां जातो महाभटः ॥११॥
 एकदा च नरेन्द्रेण संविचार्येति मानसे। राजा मद्भूरिपुत्राणां मध्ये कोऽत्र भविष्यति ॥१२॥
 पृष्ठो नैमित्तिको प्राह शृणु त्वं भो नरेश्वर। यः सिंहासनमासीनो भेरीं सन्ताडयन्मुदा ॥१३॥
 पायसं कुक्कुराणां च ददत्संभोक्ष्यते स्वयम्। अग्निदाहो तथा हस्तिच्छत्रसिंहासनं शुभम् ॥१४॥
 शीघ्रं निस्सारयत्येव स ते राज्यश्रियः सुखम्। भोक्ता भविष्यति व्यक्तं सन्देहो न महामते ॥१५॥

इसमें कोई आश्चर्य नहीं। उपश्रेणिक एक दिन इसी घोड़े पर सवार हो हवा खोरी के लिए निकले। इन्होंने बैठने पर जैसे ही उसकी लगाम तानी कि वह हवा हो गया। बड़ी देर बाद वह एक अटवी में जाकर ठहरा। उस अटवी का मालिक एक यमदण्ड नाम का भील था, जो देखने में सचमुच ही यम सा भयानक था। उसके तिलकावती नाम की एक लड़की थी। तिलकावती बड़ी सुन्दरी थी। उसे देख यह कहना अनुचित न होगा कि कोयले की खान में हीरा निकला। कहाँ काला भुसंड यमदण्ड और कहाँ स्वर्ग के अप्सराओं को लजाने वाली इसकी लड़की चन्द्रवदनी तिलकावती अस्तु, उस भुवन-सुन्दर रूपराशि को देखकर उपश्रेणिक उस पर मोहित हो गए। उन्होंने तिलकावती के लिए यमदण्ड से मँगनी की। उत्तर में यमदण्ड ने कहा-राज-राजेश्वर, इसमें कोई सन्देह नहीं कि मैं बड़ा भाग्यवान् हूँ। जब कि एक पृथ्वी के सम्राट् मेरे जमाई बनते हैं और इसके लिए मुझे बेहद खुशी है। मैं अपनी पुत्री का आप के साथ ब्याह करूँ, इसके पहले आपको एक शर्त करनी होगी और वह कि आप राज्य तिलकावती से होने वाली सन्तान को देंगे। उपश्रेणिक ने यमदण्ड की इस बात को स्वीकार कर लिया। यमदण्ड ने भी तब अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उसका ब्याह उपश्रेणिक से कर दिया। उपश्रेणिक फिर तिलकावती को साथ ले राजगृह आ गए ॥४-१०॥

कुछ समय सुखपूर्वक बीतने पर तिलकावती के एक पुत्र हुआ। उसका नाम रखा गया चिलात पुत्र एक दिन उपश्रेणिक ने विचार कर कि मेरे इन पुत्रों में राजयोग किसको है, एक निमित्तज्ञानी को बुलाया और उससे पूछा-पंडित जी, अपना निमित्तज्ञान देखकर बतलाइये कि मेरे इतने पुत्रों में राज्य सुख कौन भोग सकेगा? निमित्तज्ञानी ने कहा-महाराज, जो सिंहासन पर बैठा हुआ नगाड़ा बजाता रहा और दूर ही से कुत्तों को खीर खिलाता हुआ आप भी खाता रहे और आग लगने पर सिंहासन, छत्र, चँवर आदि राज्य चिह्नों को निकाल ले भागे, वह राज्य-लक्ष्मी का सुख भोग करेगा। इसमें आप किसी तरह का सन्देह न समझें। उपश्रेणिक ने एक दिन इस बात की परीक्षा करने के लिए अपने सब पुत्रों को खीर खाने के लिए बैठाया। उनके पास ही सिंहासन और एक नगाड़ा भी रखवा दिया। पर यह

तच्छ्रुत्वा तत्परीक्षार्थं प्रश्रेणिकमहीभुजा । भोजनं सर्वपुत्रेभ्यो दत्त्वा मुक्ताश्च कुक्कुराः ॥१६॥
तदा सर्वे कुमारस्ते नष्टाः शीघ्रं भयाकुलाः । श्रेणिकस्तु सुधीश्चारु सिंहासनमधिष्ठितः ॥१७॥
निजान्ते भजनान्युच्चैर्धृत्वा सर्वाणि दूरतः । एकैकं भाजनं दत्त्वा कुक्कुराणां स्वयं पुनः ॥१८॥
भुङ्क्ते स्म पायसं भेरीं ताडयंश्च भटोत्तमः । वह्निदाहे तथा हस्तिच्छत्रसिंहासनं द्रुतम् ॥१९॥
सुधीर्निस्सारयामास बुद्धिः कर्मानुसारिणी । संभविष्यति राजायं ततः प्रश्रेणिकः प्रभुः ॥२०॥
ज्ञात्वा चित्ते प्रयत्नार्थं प्रपञ्चेन विचक्षणः । कुक्कुरोच्छिष्टकं दोषं दत्त्वा तं तनयं शुभम् ॥२१॥
पुरान्निस्सारयामास श्रेणिकं दोषवर्जितम् । भवन्ति भूतले नित्यं भूपाला गूढमंत्रकाः ॥२२॥
ततः श्रीश्रेणिको धीमान्प्राप्तो मध्याह्निकेऽहनि । नन्दग्रामं तथा विप्रैराज्यमान्यैर्मदोद्धतैः ॥२३॥

किसी को पता न पड़ने दिया कि ऐसा क्यों किया गया। सब कुमार भोजन करने को बैठे और खाना उन्होंने आरम्भ किया, कि इतने में एक ओर से सैकड़ों कुत्तों का झुण्ड का झुण्ड उन पर आ टूटा। तब वे सब डर के मारे उठ-उठकर भागने लगे। श्रेणिक उन कुत्तों से न डरा, वह जल्दी से उठकर खीर की पत्तलों को एक ऊँचे स्थान पर धरने लगा। थोड़ी ही देर में उसने बहुत-सी पत्तले इकट्ठी कर ली। इसके बाद वह स्वयं उस ऊँचा स्थान पर रखे हुए सिंहासन पर बैठकर नगाड़ा बजाने लगा, जिससे कुत्ते उसके पास न आ पावें और इकट्ठी की हुई पत्तलों में से एक-एक पत्तल उठा-उठा कर दूर-दूर फेंकता गया। इस प्रकार अपनी बुद्धि से व्यवस्था कर उसने बड़ी निर्भयता के साथ भोजन किया। इसी प्रकार आग लगने पर श्रेणिक ने सिंहासन, छत्र, चँवर आदि राज्य चिह्नों की रक्षा कर ली ॥११-१९॥

उपश्रेणिक को तब निश्चय हो गया कि इन सब पुत्रों में श्रेणिक ही एक ऐसा भाग्यशाली है जो मेरे राज्य को अच्छी तरह चलायेगा। उपश्रेणिक ने तब उसकी रक्षा के लिए उसे वहाँ से कहीं भेज देना उचित समझा। उन्हें इस बात का खटका था कि मैं राज्य का मालिक तिलकावती के पुत्र को बना चुका हूँ और ऐसी दशा में श्रेणिक यहाँ रहा तो कोई असंभव नहीं कि इसकी तेजस्विता, इसकी बुद्धिमानी, इसकी कार्यक्षमता को देखकर किसी को डाह उपज जाए और उस हालत में इसका कुछ अनिष्ट हो जाए। इसलिए जब तक यह अच्छा होशियार न हो जाये तब तक उसका कहीं बाहर रहना ही उत्तम हैं फिर यदि इसमें बल होगा तो यह स्वयं राज्य को हस्तगत कर सकेगा। इसके लिए उपश्रेणिक ने श्रेणिक के सिर पर यह अपराध मढ़ा कि उसने कुत्तों का झूठा खाया है, इसलिए अब यह राजघराने में रहने योग्य नहीं रहा। मैं उसे आज्ञा करता हूँ कि यह मेरे राज्य से निकल जाये। सच है, राजा लोग बड़े विचार के साथ काम करते हैं। निरपराध श्रेणिक पिता की आज्ञा पा उसी समय राजगृह से निकल गया। फिर एक मिनट के लिए भी वह वहाँ न ठहरा ॥२०-२२॥

श्रेणिक वहाँ से चलकर कोई दोपहर के समय नन्द नामक गाँव में पहुँचा। वहाँ के लोगों को श्रेणिक के निकाले जाने का हाल मालूम हो गया था, इसलिए राजद्रोह के भय से उन्होंने श्रेणिक को अपने गाँव में न रहने दिया। श्रेणिक ने तब लाचार हो आगे का रास्ता लिया। रास्ते में उसे एक

तस्मान्निर्घाटितश्चापि परिव्राजकसन्मठे। कृत्वा तद्भोजनं तस्य गृहीत्वा विष्णुधर्मकम् ॥२४॥
 दक्षिणाभिमुखं पश्चाच्चचालाथ कथान्तरम्। काञ्चीपुरे महाराजो वसुपालो विचक्षणः ॥२५॥
 वसुमत्यभिधा राज्ञी तयोः पुत्री बभूव च। सद्रूपयौवनोपेता वसुमित्रा गुणोज्ज्वला ॥२६॥
 सोमशर्मा द्विजो मंत्री सोमश्रीब्राह्मणीप्रियः। तयोरभयमत्याख्या पुत्री चातिविचक्षणा ॥२७॥
 स मंत्री सोमशर्मा च गत्वा गंगादितीर्थकम्। पश्चाद्गेहं समागच्छन्मार्गे तेनैव वीक्षितः ॥२८॥
 प्रोक्तं च श्रेणिकेनेति विप्ररूपप्रधारिणा। अहो माम तव स्कन्धमारोहामि गुणोज्ज्वल ॥२९॥
 मम स्कन्धं समारोह त्वकं चापि द्रुतं यतः। गम्यते तच्छ्रुतेस्तेन चिन्तितं ग्रहिलोस्त्ययम् ॥३०॥
 तथा मार्गे बृहद्ग्रामः श्रेणिकेन हसो मतः। लघुग्रामो महानुक्तो यत्र भुक्तं सुभोजनम् ॥३१॥
 धृतं वृक्षतले छत्रं मार्गे तत्संवृतं पुनः। पादत्राणं जले पादे धृतं हस्ते महापथि ॥३२॥
 बद्धा नारी विमुक्ता वा कुट्यते चेति जल्पितम्। मृतोयं मृतकश्चापि जीवितो गच्छतीति वा ॥३३॥

संन्यासियों का आश्रम मिला। उसने कुछ दिनों यहीं अपना डेरा जमा दिया। मठ में वह रहता और संन्यासियों का उपदेश सुनता। मठ का प्रधान संन्यासी बड़ा विद्वान् था। श्रेणिक पर उसका बहुत असर पड़ा। उसने तब वैष्णव धर्म स्वीकार कर लिया। श्रेणिक और कुछ दिनों तक यहाँ ठहरा। उसके बाद वह वहाँ से रवाना होकर दक्षिण दिशा की ओर बढ़ा ॥२३-२५॥

इसी समय दक्षिण की राजधानी काँची के राजा वसुपाल थे। उनकी रानी का नाम वसुमती था। इनके वसुमित्रा नाम की एक सुन्दर और गुणवती पुत्री थी। वहाँ एक सोमशर्मा ब्राह्मण रहता था, सोमशर्मा की स्त्री का नाम सोमश्री था। उसके भी एक पुत्री थी। इसका नाम अभयमती था। अभयमती बड़ी बुद्धिमती थी ॥२५-२७॥

एक बार सोमशर्मा तीर्थयात्रा करके लौट रहा था। रास्ते में उसे श्रेणिक ने देखा। कुछ मेल-मुलाकात और बोल-चाल हुए बाद में जब ये दोनों चलने को तैयार हुए तब श्रेणिक ने सोमशर्मा से कहा-मामाजी, आप भी बड़ी दूर से आते हैं और मैं भी बड़ी दूर से चला आ रहा हूँ, इसलिए हम दोनों ही थक चुके हैं। अच्छा हो यदि आप मुझे अपने कन्धे पर बैठा लें और आप मेरे कन्धे पर बैठकर चलें तो। श्रेणिक की यह बे-सिर पैर की बात सुनकर सोमशर्मा बड़ा चकित हुआ। उसने समझा कि यह पागल हो गया जान पड़ता है। उसने तब श्रेणिक की बात का कुछ जवाब न दिया। थोड़ी देर चुपचाप आगे बढ़ने पर श्रेणिक ने दो गाँवों को देखा। उसने तब जो छोटा गाँव था उसे तो बड़ा बताया और जो बड़ा था उसे छोटा बताया। रास्ते में श्रेणिक जहाँ सिर पर कड़ी धूप पड़ती वहाँ तो छत्री उतार लेता और जहाँ वृक्षों की ठंडी छाया आती वहाँ तो छत्री चढ़ा लेता। इसी तरह जहाँ कोई नदी-नाला पड़ता तब तो वह जूतियों को पाँवों में पहन लेता और रास्ते में उन्हें हाथ में लेकर नंगे पैरों चलता। आगे चलकर उसने एक स्त्री को पति द्वारा मार खाती देखकर सोमशर्मा से कहा-क्यों मामाजी, यह जो स्त्री पिट रही है वह बँधी है या खुली? आगे एक मरे पुरुष को देखकर उसने

शालिक्षेत्रं समालोक्य कुटुम्बजनकेन च। एतत्किं भक्षितं किं वा भक्ष्यते भो वद द्विज ॥३४॥
 इत्यादिचेष्टितं मार्गे तं प्रकुर्वन्तमद्भुतम्। श्रेणिकं स द्विजो धृत्वा काञ्चीपुरबहिस्तदा ॥३५॥
 स्वयं स्वगृहमायातो-भयमत्या प्रजल्पितः। पुत्र्या भो तात चैकाकी गतस्त्वं च समागतः ॥३६॥
 तच्छ्रुत्वा सोमशर्मासौ जगौ भो पुत्रि मे पथि। आगच्छतो बटुश्चैको रूपवान्ग्रहिलो महान् ॥३७॥
 मिलितः पुरबाह्यो स तिष्ठत्यत्र महामते। तत्समाकर्ण्य सा पुत्री संजगाद विचक्षणा ॥३८॥
 कीदृशो ग्रहिलो सोपि भो पितश्च तदा द्विजः। सोमशर्मा जगौ सर्व स्कन्धारोहणादिकम् ॥३९॥

पूछा कि यह जीता है या मर गया? थोड़ी दूर चलकर उसने एक धान के पके हुए खेत को देखकर कहा—
 इसे इसके मालिकों ने खा लिया है या वे अब खायेंगे? इसी तरह सारे रास्ते में एक से एक असंगत
 और बे-मतलब के प्रश्न सुनकर बेचारा सोमशर्मा ऊब गया। राम-राम करते वह घर पर आया।
 श्रेणिक को वह शहर के बाहर ही एक जगह बैठकर यह कह आया कि मैं अपनी लड़की से पूछकर
 अभी आता हूँ, तब तक तुम यहीं बैठना ॥२८-३५॥

अभयमती अपने पिता को आया देखकर खुश हुई। उन्हें कुछ खिला-पिला कर उसने पूछा—
 पिताजी, आप अकेले गए थे और अकेले ही आए हैं क्या? सोमशर्मा ने कहा—बेटा, मेरे साथ एक
 बड़ा ही सुन्दर लड़का आया है। पर बड़े दुःख की बात है कि वह बेचारा पागल हो गया जान पड़ता
 है। उसकी देवकुमार सी सुन्दर जिन्दगी धूलधानी हो गई। कर्मों की लीला बड़ी ही विचित्र है। मुझे तो
 उसकी यह स्वर्गीय सुन्दरता और साथ ही उसका वह पागलपन देखकर उस पर बड़ी दया आती है।
 मैं उसे शहर के बाहर एक स्थान पर बैठा आया हूँ। अपने पिता की बातें सुनकर अभयमती को बड़ा
 कौतुक हुआ। उसने सोमशर्मा से पूछा—हाँ तो पिताजी उसमें किस तरह का पागलपन है? मुझे उसके
 सुनने की बड़ी उत्कण्ठा हो गई है। आप बतलावें। सोमशर्मा ने तब अभयमती से श्रेणिक की वे सब
 चेष्टाएँ—कन्धे पर चढ़ना—चढ़ाना, छोटे गाँव को बड़ा और बड़े को छोटा कहना, वृक्ष के नीचे छत्री चढ़ा
 लेना और धूप में उतार देना, पानी में चलते समय जूते पहन लेना और रास्ते में चलते उन्हें हाथ में
 ले लेना आदि कह सुनाई। अभयमती ने उन सब को सुनकर अपने पिता से कहा—पिताजी, जिस पुरुष
 ने ऐसी बातें की हैं, उसे आप पागल या साधारण पुरुष न समझें। वह तो बड़ा ही बुद्धिमान् है। मुझे
 मालूम होता है उसकी बातों के रहस्य पर आपने ध्यान से विचार न किया। इसी से आपको उसकी
 बातें बे-सिर पैर की जान पड़ी। पर ऐसा नहीं है। उन सबमें कुछ न कुछ रहस्य जरूर है। अच्छा, वह
 सब मैं आपको समझाती हूँ—पहले उसने जो यह कहा कि आप मुझे अपने कन्धे पर चढ़ा लीजिए और
 आप मेरे कन्धों पर चढ़ जाइए, इससे उसका मतलब था, आप हम दोनों एक ही रास्ते से चलें क्योंकि
 स्कन्ध शब्द का अर्थ रास्ता भी होता है और यह उसका कहना ठीक था। इसलिए कि दो जने साथ
 रहने से हर तरह बड़ी सहायता मिलती रहती है ॥३६-३९॥

श्रुत्वा तच्चेष्टितं कन्या तद्व्याख्यानं विधाय च । स्तोकं तैलं खलं तस्य प्रेषयामास मज्जने ॥४०॥

दूसरे उसने दो ग्रामों को देखकर बड़े को तो छोटा और छोटे को बड़ा कहा था। इसमें उसका अभिप्राय यह है कि छोटे गाँव के लोग सज्जन हैं, धर्मात्मा हैं, दयालु हैं, परोपकारी हैं और हर एक की सहायता करने वाले हैं। इसलिए यद्यपि वह गाँव छोटा था, पर तब भी उसे बड़ा ही कहना चाहिए क्योंकि बड़प्पन गुणों और कर्तव्य पालन से कहलाता है। केवल बाहरी चमक दमक से नहीं और बड़े गाँव को उसने तब छोटा कहा, इससे उसका मतलब स्पष्ट है कि उसके रहवासी अच्छे लोग नहीं हैं, उनमें बड़प्पन के जो गुण होना चाहिए वे नहीं हैं।

तीसरे उसने वृक्ष के नीचे छत्री को चढ़ा लिया था और रास्ते में उसे उतार लिया था। ऐसा करने से उसकी मंशा यह थी। रास्ते में छत्री को न लगाया जाये तो भी कुछ नुकसान नहीं और वृक्ष के नीचे न लगाने से उस पर बैठे हुए पक्षियों के बीट वगैरह के करने का डर बना रहता है। इसलिए वहाँ छत्री का लगाना आवश्यक है।

चौथे उसने पानी में चलते समय तो जूतों को पहर लिया और रास्ते में चलते समय उन्हें हाथ में ले लिया था। इससे वह यह बतलाना चाहता है—पानी में चलते समय यह नहीं दीख पड़ता है कि कहाँ क्या पड़ा है। काँटे, कीलें और कंकर-पत्थरों के लग जाने का भय रहता है, जल जन्तुओं के काटने का भय रहता है। अतएव पानी में उसने जूतों को पहर कर बुद्धिमानों का ही काम किया। रास्ते में अच्छी तरह देखभाल कर चल सकते हैं, इसलिए यदि वहाँ जूते न पहने जायें तो उतनी हानि की संभावना नहीं।

पाँचवें उसने एक स्त्री को मार खाते देखकर पूछा था कि यह स्त्री बँधी है या खुली? इस प्रश्न से मतलब था—उस स्त्री का ब्याह हो गया है या नहीं?

छठे—उसने एक मुर्दे को देखकर पूछा था—यह मर गया है या जीता है? पिताजी, उसका यह पूछना बड़ा मार्के का था। इससे वह यह जानना चाहता था कि यदि यह संसार का कुछ काम करके मरा है, यदि इसने स्वार्थ त्याग अपने धर्म, अपने देश और अपने देश के भाई-बन्धुओं के हित में जीवन का कुछ हिस्सा लगाकर मनुष्य जीवन का कुछ कर्तव्य पालन किया है, तब तो वह मरा हुआ भी जीता ही है। क्योंकि उसकी यह प्राप्त की हुई कीर्ति मौजूद है, सारा संसार उसे स्मरण करता है, उसे ही अपना पथ प्रदर्शक बनाता है। फिर ऐसी हालत में उसे मरा कैसे कहा जाये? और इससे उल्टा जो जीता रह कर भी संसार का कुछ काम नहीं करता, जिसे सदा अपने स्वार्थ की ही पड़ी रहती है और जो अपनी भलाई के सामने दूसरों के होने वाले अहित या नुकसान को नहीं देखता; बल्कि दूसरों का बुरा करने की कोशिश करता है ऐसे पृथ्वी के बोझ को कौन जीता कहेगा? उससे जब किसी को लाभ नहीं तब उसे मरा हुआ ही समझना चाहिए।

याचिते भाजने चापि तदासौ कर्दमे सुधीः। गर्ताद्वयं विधायोच्चै-धृत्वा ते भाजने ददौ ॥४१॥
ततस्तया समाहूतः सोपि कर्दममार्गके। परीक्षार्थं जलं स्तोकं दत्तं तस्मै विदेशिने ॥४२॥

सातवें उसने पूछा कि यह धान को खेत मालिकों द्वारा खा-लिया गया है या खाया जाएगा? इस प्रश्न से उसका यह मतलब था कि इसके मालिकों ने कर्ज लेकर इस खेत को बोया है या इसके लिए उन्हें कर्ज लेने की जरूरत न पड़ी अर्थात् अपना ही पैसा उन्होंने इसमें लगाया है? यदि कर्ज लेकर उन्होंने इसे तैयार किया तब तो समझना चाहिए कि यह खेत पहले ही खा लिया गया और यदि कर्ज नहीं लिया गया तो अब वे इसे खायेंगे-अपने उपयोग में लगावेंगे।

इस प्रकार श्रेणिक के सब प्रश्नों का उत्तर अभयमती ने अपने पिता को समझाया। सुनकर सोमशर्मा को बड़ा ही आनन्द हुआ। सोमशर्मा तब अभयमती से कहा-तो बेटी, ऐसे गुणवान् और रूपवान् लड़के को तो अपने घर लाना चाहिए और अभयमती, वह जब पहले ही मिला तब उसने मुझे मामाजी कह कर पुकारा था। इसलिए उसका कोई अपने साथ सम्बन्ध भी होगा। अच्छा तो मैं उसे बुलाये लाता हूँ।

अभयमती बोली-पिताजी, आपको तकलीफ उठाने की कोई आवश्यकता नहीं। मैं अपनी दासी को भेजकर, उसे अभी बुलवा लेती हूँ। मुझे अभी एक दो बातों द्वारा और उसकी जाँच करना है। इसके लिए मैं निपुणमती को भेजती हूँ। अभयमती ने इसके बाद निपुणमती को कुछ थोड़ा सा उबटन चूर्ण देकर भेजा और कहा तू उस नये आगन्तुक से कहना कि मेरी मालकिन ने आपकी मालिश के लिए यह तैल और उबटन चूर्ण भेजा है, सो आप अच्छी तरह मालिश तथा स्नान करके फलाँ रास्ते से घर पर आवें। निपुणमती ने श्रेणिक के पास पहुँच कर सब हाल कहा और तेल तथा उबटन रखने को उससे बर्तन माँगा। श्रेणिक उस थोड़े से तेल और उबटन को देखकर, जिससे कि एक हाथ की भी मालिश होना असंभव था, दंग रह गया। उसने तब जान लिया कि सोमशर्मा से मैंने जो-जो प्रश्न किए थे उसने अपनी लड़की से अवश्य कहा है और इसी से उसकी लड़की ने मेरी परीक्षा के लिए यह उपाय रचा है। अस्तु, कुछ परवाह नहीं। यह विचार कर श्रेणिक ने तेल और उबटन चूर्ण के रखने को अपने पाँव के अँगूठे से दो गढ़े बनाकर निपुणमती से कहा-आप तेल और चूर्ण के लिए बरतन चाहती हैं। अच्छी बात है, ये (गढ़े की और इशारा करके) बरतन हैं। आप इनमें तेल और चूर्ण रख दीजिए। मैं थोड़ी ही देर बाद स्नान करके आपकी मालकिन की आज्ञा का पालन करूँगा। निपुणमती श्रेणिक की इस बुद्धिमानी को देखकर दंग रह गई। वह फिर श्रेणिक के कहे अनुसार तेल और चूर्ण रखकर चली गई ॥४०-४१॥

अभयमती ने श्रेणिक को जिस रास्ते से बुलाया था, उसमें उसने कोई घुटने-घुटने तक कीचड़ करवा दिया था और कीचड़ बाहर होने के स्थान पर बाँस की एक छोटी सी पतली छोई (कमची)

तेन तज्जलमादाय कर्दमं वंशकंछया। दूरीकृत्य सुधूर्त्तेन पादौ प्रक्षालितौ सुखम् ॥४३॥
 तथा चक्रप्रवाले च प्रोतं सूत्रं स्वबुद्धितः। तच्चातुरीं समालोक्य ततोऽभयमती मुदा ॥४४॥
 तं वरं श्रेणिकं चारु-विवाहविधिना द्रुतम्। स्वीचक्रे कृतपुण्यानां मांगल्यं च पदे पदे ॥४५॥
 अथ कश्चिद् द्विजो धीमान्महाटव्यां दिगुप्सितः। जिनदत्ताभिधानस्य पार्श्वे श्रुत्वा जिनेशिनाम् ॥४६॥
 धर्मं शर्माकरं योन्यः सोमशर्माभिधानकः। संन्यासेन मृतः प्राप्य स्वर्गं सौधर्मसंज्ञकम् ॥४७॥
 तस्मादागत्य पुण्येन तत्र कांचीपुरे शुभे। श्रेणिकाभयमत्योश्च पुत्रोभयकुमारवाक् ॥४८॥

और बहुत ही थोड़ा सा जल रख दिया था। इसलिए कि श्रेणिक अपने पाँवों को साफ कर भीतर आए ॥४२-४३॥

श्रेणिक ने घर पहुँच कर देखा तो भीतर जाने के रास्ते में बहुत कीचड़ हो रहा है। वह कीचड़ में होकर यदि जाये तो उसके पाँव भरते हैं और दूसरी ओर से भीतर जाने का रास्ता उसे मालूम नहीं है। यदि वह मालूम भी करें तो उससे कुछ लाभ नहीं। अभयमती ने उसे इसी रास्ते बुलाया है। यह फिर कीचड़ में ही होकर गया। बाहर होते ही उसे पाँव धोने के लिए थोड़ा जल रखा हुआ मिला। वह बड़े आश्चर्य में आ गया कि कीचड़ से ऐसे लथपथ भरे पाँवों को मैं इसे थोड़े से पानी से कैसे धो सकूँगा। पर इसके सिवा उसके पास और कुछ उपाय भी न था। तब उसने पानी के पास ही रखी हुई उस छाई को उठाकर पहले उससे पाँवों का कीचड़ साफ कर लिया और फिर उस थोड़े से जल से धोकर एक कपड़े से उन्हें पोंछ लिया। इन सब परीक्षाओं में पास होकर जब श्रेणिक अभयमती के सामने आया तब अभयमती ने उसके सामने एक ऐसा मूंग का दाना रखा कि जिसमें हजारों बाँके-सीधे छेद थे। यह पता नहीं पड़ पाता था कि किस छेद में सूत का धागा पिरोने से उसमें पिरोया जा सकेगा और साधारण लोगों के लिए यह बड़ा कठिन भी था। पर श्रेणिक ने अपनी बुद्धि की चतुरता से उस मूंग में बहुत जल्दी धागा पिरो दिया। श्रेणिक की इस बुद्धिमानी को देखकर अभयमती दंग रह गई उसने तब मन ही मन संकल्प किया कि मैं अपना ब्याह इसी के साथ करूँगी। इसके बाद उसने श्रेणिक का बड़ी अच्छी तरह आदर-सत्कार किया, खूब आनन्द के साथ उसे अपने ही घर पर जमाया और कुछ दिनों के लिए उसे वहीं ठहरा भी लिया। अभयमती की मंशा उसकी सखी द्वारा जानकर उसके माता-पिता को बड़ी प्रसन्नता हुई। घर बैठे उन्हें ऐसा योग्य जैवाई मिल गया, इससे बढ़कर और प्रसन्नता की बात उनके लिए हो भी क्या सकती थी। कुछ दिनों बाद श्रेणिक के साथ अभयमती का ब्याह भी हो गया। दोनों ने नए जीवन में प्रवेश किया। श्रेणिक के कष्ट भी बहुत कम हो गए। वह अब अपनी प्रिया के साथ सुख से दिन बिताने लगा ॥४४-४५॥

सोमशर्मा नाम का एक ब्राह्मण एक अटवी में जिनदत्त मुनि के पास दीक्षा लेकर संन्यास मरण हुआ था। उसका उल्लेख अभिषेक विधि से प्रेम करने वाले जिनदत्त और वसुमित्र की १०३ वीं कथा में आ चुका है। वह सोमशर्मा यहाँ से मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। जब इसकी स्वर्गायु

संजातः सुगुणोपेतश्चरमाङ्गो महाभटः। भाविमुक्तिवधूकान्तो वर्ण्यते केन भूतले ॥४९॥
 अथ काञ्चीपुराधीशो वसुपालो गुणोज्ज्वलः। गत्वा विजययात्रार्थं दृष्ट्वा तत्रैकमद्भुतम् ॥५०॥
 एकस्तंभसमुत्पन्नं प्रासादं श्रीजिनेशिनाम्। काञ्च्यां सम्प्रेषयामास लेखं श्रीसोमशर्मणः ॥५१॥
 एकस्तंभोत्थितं चारु शर्मदं जिनमन्दिरम्। कार्यं त्वया प्रवेगेन तदासौ सोमशर्मवाक् ॥५२॥
 तद्विज्ञानमजानंश्च चित्तेऽभूद्व्याकुलो महान्। पृष्ट्वा तत्कारणं तेन श्रेणिकेन महाधिया ॥५३॥
 प्रासादः श्रीजिनेन्द्राणां कारितः सुमनोहरः। सद्विज्ञानं विना पुण्यैः प्राप्यते नैव भूतले ॥५४॥

पूरी हुई तब यह कांचीपुर में हमारे इस कथानायक श्रेणिक के अभयकुमार नाम का पुत्र हुआ। अभयकुमार बड़ा वीर और गुणवान् था और सच भी है जो कर्मों का नाशकर मोक्ष जाने वाला है, उसकी वीरता का क्या पूछना? ॥४६-४९॥

कांची के राजा वसुपाल एक बार दिग्विजय करने को निकले। एक जगह उन्होंने एक बड़ा ही सुन्दर और भव्य जिनमन्दिर देखा। उसमें विशेषता यह थी कि वह एक ही खम्भे के ऊपर बनाया गया था—उसका आधार एक ही खम्भा था। वसुपाल उसे देखकर बहुत खुश हुए। उनकी इच्छा हुई कि ऐसा मन्दिर कांची में भी बनवाया जाए। उन्होंने उसी समय अपने पुरोहित सोमशर्मा को एक पत्र लिखा। उसमें लिखा कि—अपने यहाँ एक ऐसा सुन्दर जिनमंदिर तैयार करवाना जिसकी इमारत भव्य और बड़ी मनोहर हो। सिवा इसके उसमें यह विशेषता भी हो कि मंदिर की सारी इमारत एक ही खम्भे पर खड़ी हो जाए। मैं जब तक आऊँ तब तक मंदिर तैयार हो जाना चाहिए। सोमशर्मा पत्र पढ़कर बड़ी चिन्ता में पड़ गया। वह इस विषय में कुछ जानता न था, इसलिए वह क्या करे? कैसा मंदिर बनवाएँ? इसकी उसे कुछ सूझ न पड़ती थी। चिन्ता उसके मुँह पर सदा छाई रहती थी। उसे इस प्रकार उदास देखकर श्रेणिक ने उससे उसकी उदासी का कारण पूछा। सोमशर्मा ने तब वह पत्र श्रेणिक के हाथ में देकर कहा—यही पत्र मेरी चिन्ता का मुख्य कारण है। मुझे इस विषय का किंचित् भी ज्ञान नहीं तब मैं मन्दिर बनवाऊँ भी तो कैसा? इसी से मैं चिन्तामग्न रहता हूँ! श्रेणिक ने सोमशर्मा से कहा—आप इस विषय की चिन्ता छोड़कर इसका सारा भार मुझे दे दीजिए। फिर देखिए, मैं थोड़े ही समय में महाराज के लिखे अनुसार मंदिर बनवाये देता हूँ। सोमशर्मा को श्रेणिक के इस साहस पर आश्चर्य तो अवश्य हुआ, पर उसे श्रेणिक की बुद्धिमानी का परिचय पहले ही मिल चुका था; इसलिए उसे कुछ सोच-विचार न कर सब काम श्रेणिक के हाथ सौंप दिया। श्रेणिक ने पहले मन्दिर का एक नक्शा तैयार किया। जब नक्शा उसके मन के माफिक बन गया तब उसने हजारों अच्छे-अच्छे कारीगरों को लगाकर थोड़े ही समय में मन्दिर की विशाल और भव्य इमारत तैयार करवा ली। श्रेणिक की इस बुद्धिमानी को जो देखता वही उसकी शतमुख से तारीफ करता और वास्तव में श्रेणिक ने यह कार्य प्रशंसा के लायक किया भी था। सच है, उत्तम ज्ञान, कला-चतुराई ये सब बातें बिना पुण्य के प्राप्त नहीं होती ॥५०-५४॥

आगतेन ततो राज्ञा दृष्ट्वा तं श्रीजिनालयम्। सन्तुष्टेन निजा पुत्री वसुमित्रा महोत्सवैः ॥५५॥
 दत्ता श्रीवसुपालेन श्रेणिकाय गुणोज्ज्वला। अतो राजगृहे जातं वक्ष्ये चान्यत्कथानकम् ॥५६॥
 प्रश्रेणिको महाराजः सुधीर्वैराग्यमाश्रितः। दत्त्वा चिलातपुत्राय राज्यं जातो मुनीश्वरः ॥५७॥
 ततश्चिलातपुत्रे च सर्वान्यायरते द्रुतम्। प्रधानैः श्रेणिकस्योच्चैर्लेखः संप्रेषितस्तदा ॥५८॥
 तं दृष्ट्वा श्रेणिकश्चापि प्रोक्त्वा भार्याद्वयं प्रति। पुरे राजगृहे ख्याते चारुपाण्डुकुटीं मुदा ॥५९॥
 आगच्छेस्त्वमिति व्यक्तं स्वयं चागत्य वेगतः। पुराच्चिलातपुत्रं तं तस्मान्निर्घाट्य कण्टकम् ॥६०॥

जब वसुपाल लौटकर कांची आए और उन्होंने मन्दिर की उस भव्य इमारत को देखा तो वे बड़े खुश हुए। श्रेणिक पर उनकी अत्यन्त प्रीति हो गई उन्होंने तब अपनी कुमारी वसुमित्रा का उसके साथ ब्याह भी कर दिया। श्रेणिक राजजमाई बनकर सुख के साथ रहने लगा ॥५५-५६॥

अब राजगृह की कथा लिखी जाती है-

उपश्रेणिक ने श्रेणिक को, उसकी रक्षा हो इसके लिए, देश बाहर कर दिया। इसके बाद कुछ दिनों तक उन्होंने और राज्य किया। फिर कोई कारण मिल जाने से उन्हें संसार-विषय-भोगादि से बड़ा वैराग्य हो गया। इसलिए वे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार, चिलातपुत्र को सब राज्यभार सौंपकर दीक्षा ले, योगी हो गए। राज्यसिंहासन को अब चिलातपुत्र ने अलंकृत किया। प्रायः यह देखा जाता है कि एक छोटी जाति के या विषयों के कीड़े, स्वार्थी, अभिमानी, मनुष्य को कोई बड़ा अधिकार या खूब मनमानी दौलत मिल जाती है तो फिर उसका सिर आसमान में चढ़ जाता है, आँखें उसकी अभिमान के कारण नीची देखती ही नहीं। ऐसा मनुष्य संसार में फिर सब कुछ अपने को ही समझने लगता है। दूसरों की इज्जत-आबरू की वह कुछ भी परवाह न कर उनका कौड़ी के भाव भी मोल नहीं समझता। चिलातपुत्र भी ऐसे ही मनुष्यों में था। बिना परिश्रम या बिना हाथ-पाँव हिलाये उसे एक विशाल राज्य मिल गया और मजा यह कि अच्छे शूरवीर और गुणवान् भाइयों के बैठे रहते। तब उसे क्यों न राजलक्ष्मी का अभिमान हो? क्यों न वह गरीब प्रजा को पैरों नीचे कुचलकर इस अभिमान का उपयोग करे? उसकी माँ भील की लड़की, जिसका कि काम दिन-रात लूट-खसोट करने और लोगों को मारने-काटने का रहा, उसके विचार गन्दे, उसकी वासनाएँ नीचातिनीच; तब वह अपनी जाति, अपने विचार और अपनी वासना के अनुसार यदि काम करे तो इसमें नई बात क्या? कुछ लोग ऐसा कहें कि यह सब कुछ होने पर भी अब वह राजा है, प्रजा का प्रतिपालक है, तब उसे तो अच्छा होना ही चाहिए। इसका यह उत्तर है कि ऐसा होना आवश्यक है और एक ऐसे मनुष्य को, जिसका कि अधिकार बहुत बड़ा है-हजारों लाखों अच्छे-अच्छे इज्जत-आबरूदार, धनी, गरीब, दीन, दुःखी जिसकी कृपा की चाह करते हैं, विशेष कर शिष्ट और सबका हितैषी होना ही चाहिए। हाँ ये सब बातें उसमें हो सकती हैं जिसमें दयालुता, परोपकारता, कुलीनता, निरभिमानता, सरलता, सज्जनता आदि गुण कुल-परम्परा से चले आते हों और जहाँ इनका मूल में ही कुछ ठिकाना नहीं वहाँ इन गुणों का होना असम्भव नहीं

तत्र राज्ये महाप्राज्ये संस्थितो निजलीलया। भवेद्राज्यं समर्थस्य भूपतेर्नैव दुर्मतेः ॥६१॥
 अथाभयकुमारेण पृष्टा माता क्व मे पिता। तच्छ्रुत्वाभयमत्याख्या जगौ पुत्र शृणु त्वकम् ॥६२॥
 देशेन मगधे राज-गृहे पाण्डुकुटीतले। महाराज्यं प्रकुर्वाणः पिता ते तिष्ठति ध्रुवम् ॥६३॥
 एतदाकर्ण्य पुत्रोसौ ततोभयकुमारवाक्। एकाकी कौतुकाच्छीघ्रं नन्दग्रामं समागतः ॥६४॥
 नन्दग्रामे तदा पूर्वनिष्कासनमहाक्रुधा। निग्रहं कर्तुकामेन श्रेणिकेन महीभुजा ॥६५॥

तो दुःसाध्य अवश्य है। आप एक कौए को मोर के पंखों से खूब सजाकर सुन्दर बना दीजिए, पर रहेगा वह कौआ का कौआ ही। ठीक इसी तरह चिलातपुत्र आज एक विशाल राज्य का मालिक जरूर बन गया, पर उसमें जो भील-जाति का अंश है वह अपने चिर संस्कार के कारण इसमें पवित्र गुणों की दाल गलने नहीं देता और यही कारण हुआ कि राज्याधिकार प्राप्त होते ही उसकी प्रवृत्ति अच्छी न होकर अन्याय की ओर हुई। प्रजा को उसने हर तरह तंग करना शुरू किया। कोई दुर्व्यसन, कोई कुकर्म उससे न छूट पाया। अच्छे-अच्छे घराने की कुलशील सतियों की इज्जत ली जाने लगी। लोगों का धन-माल जबरन लूटा-जाने लगा। उसकी कुछ पुकार नहीं, सुनवाई नहीं, जिसे रक्षक जानकर नियम किया वही जब भक्षक बन बैठा तब उसकी पुकार, की भी कहाँ जाये? प्रजा अपनी आँखों से घोर से घोर अन्याय देखती, पर कुछ करने-धरने को समर्थ न होकर वह मन मसोस कर रह जाती। जब चिलात बहुत ही अन्याय करने लगा तब उसकी खबर बड़ी-बड़ी दूर तक बात सुनाई पड़ने लगी। श्रेणिक को भी प्रजा द्वारा यह हाल मालूम हुआ। उसे अपने पिता की निरीह प्रजा पर चिलात का यह अन्याय सहन नहीं हुआ। उसने तब अपने श्वसुर वसुपाल से कुछ सहायता लेकर चिलात पर चढ़ाई कर दी। प्रजा को जब श्रेणिक की चढ़ाई का हाल मालूम हुआ तो उसने बड़ी खुशी मनाई और हृदय से उसका स्वागत किया। श्रेणिक ने प्रजा की सहायता से चिलात को सिंहासन से उतारकर देश बाहर किया और प्रजा की अनुमति से फिर आप ही सिंहासन पर बैठा। सच है, राज्यशासन वहीं कर सकता है और वही पात्र भी है जो बुद्धिमान् हो, समर्थ हो और न्यायप्रिय हो। दुर्बुद्धि, दुराचारी, कायर और अकर्मण्य पुरुष उसके योग्य नहीं ॥५७-६१॥

इधर कई दिनों से अपने पिता को न देखकर अभयकुमार ने अपनी माता से एक दिन पूछा-माँ, बहुत दिनों से पिताजी दीख नहीं पड़ते, सो वे कहाँ हैं। अभयमती ने उत्तर में कहा-बेटा, वे जाते समय कह गए थे कि राजगृह में 'पाण्डुकुटि' नाम का महल है। प्रायः मैं वहीं रहता हूँ। सो मैं जब समाचार दूँ तब वहीं आ जाना। तब से अभी तक उनका कोई पत्र न आया। जान पड़ता है राज्य के कामों से उन्हें स्मरण न रहा। माता द्वारा पिता का पता पा अभयकुमार अकेला ही राजगृह को रवाना हुआ। कुछ दिनों में वह नन्दगाँव में पहुँचा ॥६२-६४॥

पाठकों को स्मरण होगा कि जब श्रेणिक को उसके पिता उपश्रेणिक ने देश बाहर हो जाने की आज्ञा दी थी और श्रेणिक उसके अनुसार राजगृह से निकल गया था तब उसे सबसे पहले रास्ते में यही

आदेशः प्रेषितश्चेति यथा भो ब्राह्मणोत्तमाः। मृष्टतोयभृतं यूयं वटकूपं मनोहरम् ॥६६॥
 शीघ्रं प्रेषयथात्रैव युष्माकं निग्रहोन्यथा। अस्माभिः क्रियते व्यक्तं तत्समाकर्ण्य ते द्विजाः ॥६७॥
 संजाता व्याकुलाश्चित्ते ततोभयकुमारवाक्। पृष्ट्वा तत्कारणं सर्वं तेषां बुद्धिं ददौ सुधीः ॥६८॥
 ततस्तद्वचनादेव ब्राह्मणैस्तुष्टमानसैः। श्रेणिकस्य महीभर्तुर्विज्ञप्तिः प्रेषिता द्रुतम् ॥६९॥
 अस्माभिर्भणितश्चापि कूपो नागच्छति ध्रुवम्। रुष्ट्वा पुरस्य बाह्येऽसौ संस्थितो भो महीपतेः ॥७०॥
 पुरुषस्य भवेत्स्त्री च-वशीकरणमुत्तमम्। तस्माद्देव भवद्ग्रामस्थितोदुंबरकूपिका ॥७१॥
 भवद्भिः प्रेष्यते चात्र यतस्तस्यास्तु पृष्ठतः। समागच्छति कूपोसौ तच्छ्रुत्वा श्रेणिक प्रभुः ॥७२॥

नन्दगाँव पड़ा था। पर यहाँ के लोगों ने राजद्रोह के भय से श्रेणिक को गाँवों में आने नहीं दिया था। श्रेणिक इससे उन लोगों पर बड़ा नाराज हुआ था। इस समय उन्हें उनकी असहानुभूति की सजा देने के अभिप्राय से श्रेणिक ने उन पर एक हुक्मनामा भेजा और उसमें लिखा कि—“आप के गाँव में एक मीठे पानी का कुँआ है। उसे बहुत जल्दी मेरे यहाँ भेजो, अन्यथा इस आज्ञा का पालन न होने से तुम्हें सजा दी जायेगी।” बेचारे गाँव के रहने वाले स्वभाव से डरपोक ब्राह्मण राजा के इस विलक्षण हुक्मनामे को सुनकर बड़े घबराये। जो ले जाने की चीज होती है वही ले-जाई जाती है, पर कुँआ एक स्थान से अन्य स्थान पर कैसे-ले जाया जाए? वह कोई ऐसी छोटी-मोटी वस्तु नहीं जो यहाँ से उठाकर वहाँ रख दी जाए। तब वे बड़ी चिन्ता में पड़े। क्या करें, और क्या न करें, यह उन्हें बिल्कुल न सूझ पड़ा, न वे राजा के पास ही जाकर कह सकते हैं कि-महाराज, यह असम्भव बात कैसे हो सकती है। कारण गाँव के लोगों में इतनी हिम्मत कहाँ? सारे गाँव में यही एक चर्चा होने लगी। सबके मुँह पर मुर्दनी छा गई और बात भी ऐसी ही थी। राजाज्ञा न पालने पर उन्हें दण्ड भोगना चाहिए। यह चर्चा घरों घर हो रही थी कि इसी समय अभयकुमार यहाँ आ पहुँचा, जिसका कि जिकर ऊपर आ चुका है। उसने इस चर्चा का आदि अन्त मालूम कर गाँव के सब लोगों को इकट्ठा कर कहा-इस साधारण बात के लिए आप लोग ऐसा चिन्ता में पड़ गए। घबराने की कोई बात नहीं। मैं जैसा कहूँ वैसा कीजिए। आपका राजा उससे खुश होगा। तब उन लोगों ने अभयकुमार की सलाह से श्रेणिक की सेवा में एक पत्र लिखा। उसमें लिखा कि—“राजराजेश्वर, आपकी आज्ञा को सिर पर चढ़ाकर हमने कुँए से बहुत-बहुत प्रार्थनाएँ कर कहा कि-महाराज तुझ पर प्रसन्न है। इसलिए वे तुझे अपने शहर में बुलाते हैं, तू राजगृह जा! पर महाराज, उसने हमारी एक भी प्रार्थना न सुनी और उल्टा रूठकर गाँव में बाहर चल दिया। सो हमारे कहने सुनने से तो वह आता नहीं दीख पड़ता। पर हाँ उसके ले जाने का एक उपाय है और उसे यदि आप करें तो संभव है वह रास्ते पर आ जाये। वह उपाय यह है कि पुरुष स्त्रियों का गुलाम होता है, स्त्रियों द्वारा वह जल्दी वश हो जाता है। इसलिए आप अपने शहर की उदुम्बर नाम की कुई को इसे लेने को भेजें तो अच्छा हो। बहुत विश्वास है कि उसे देखते ही हमारा कुँआ उसके पीछे-पीछे हो जायेगा। श्रेणिक पत्र पढ़कर चुप रह गए। उनसे उसका कुछ उत्तर न बन पड़ा। सच है-

मौनं कृत्वा स्थितो युक्तं न धूर्तो गृह्यते सुखम्। तथान्यदा गजो राज्ञा संख्यार्थं प्रेषितस्ततः ॥७३॥
जले नावा स पाषाणै-स्तोलितो तेन धीमता। आदेशस्तु पुनस्तस्य समायातो महीपतेः ॥७४॥
कूपः पूर्वदिशिस्थोसौ कार्यो पश्चिमदिक्तटे। ग्रामस्तेन कृतः पूर्वदिशिस्थो धूर्तचेतसा ॥७५॥
मेषको प्रेषितश्चापि दुर्बलो न महान्न च। यथा तथा प्रयत्नेन रक्षणीयो मम ध्रुवम् ॥७६॥
तदा तद्वचनेनोच्चैर्बाह्याणैः सोपि मेषकः। चारयित्वा तृणं भूरि स्थापितो वृकसन्निधौ ॥७७॥
याचितं गर्गरीसंस्थं कूष्माण्डं श्रेणिकेन च। संवद्ध्य गर्गरीमध्ये प्रेषितं तैश्च तदद्भुतम् ॥७८॥
याचितायां रजोरज्वां प्रतिच्छन्दं प्रयाचितम्। इत्यादिके कृते राजा महाश्चर्यं गतस्ततः ॥७९॥

जब जैसे को तैसा मिलता है तब अकल ठिकाने पर आती है और धूर्तो को सहज में काबू में ले लेना कोई हँसी खेल थोड़े ही है? ॥६५-७३॥

कुछ दिनों बाद श्रेणिक ने उनके पास एक हाथी भेजा और लिखा कि इसका ठीक-ठीक तोल कर जल्दी खबर दो कि यह वजन में कितना है? अभयकुमार उन्हें बुद्धि सुझाने वाला था ही, सो उसके कहे अनुसार उन लोगों ने नाव में एक ओर तो हाथी को चढ़ा दिया और दूसरी ओर खूब पत्थर रखना शुरू किया। जब देखा कि दोनों ओर का वजन समतोल हो गया तब उन्होंने उन सब पत्थरों को अलग तोलकर श्रेणिक को लिख भेजा कि हाथी का तोल इतना है। श्रेणिक को अब भी चुप रह जाना पड़ा ॥७४॥

तीसरी बार तब श्रेणिक ने लिख भेजा कि “आपका कुँआ गाँव के पूर्व में है, उसे पश्चिम की ओर कर देना। मैं बहुत जल्द उसे देखने को आऊँगा।” इसके लिए अभयकुमार ने उन्हें युक्ति सुझाकर गाँव को ही पूर्व की ओर बसा दिया। इससे कुँआ सुतरां पश्चिम में हो गया ॥७५॥

चौथी बार श्रेणिक ने एक मेढ़ा भेजा कि “यह मेढ़ा न दुर्बल हो, न बढ़ जाए और न इसके खाने पिलाने में किसी तरह की असावधानी न की जाए। मतलब यह कि जिस स्थिति में यह अब है इसी स्थिति में बना रहे। मैं कुछ दिनों बाद इसे वापस मंगा लूँगा।” इसके लिए अभयकुमार ने उन्हें यह युक्ति बताई कि मेंढ़े को खूब खिला-पिला कर घण्टा दो घण्टा के लिए उसे सिंह के सामने बाँध दिया करिए, ऐसा करने से न यह बढ़ेगा और न घटेगा ही। वैसा ही किया गया। मेंढ़ा जैसा था वैसा ही रहा। श्रेणिक को इस युक्ति में भी सफलता प्राप्त न हुई ॥७६-७७॥

पाँचवी बार श्रेणिक ने उनसे घड़े में रखा एक कोला (कद्दू) मँगाया। इसके लिए अभयकुमार ने बेल पर लगे हुए एक छोटे कोले को घड़े में रखकर बढ़ाना शुरू किया और जब उससे घड़ा भर गया तब उसे घड़े को श्रेणिक के पास पहुँचा दिया ॥७८॥

छठी बार श्रेणिक ने उन्हें लिख भेजा कि “मुझे बालू-रेत की रस्सी की दरकार है, सो तुम जल्दी बनाकर भेजो।” अभयकुमार ने इसके उत्तर में यह लिखवा भेजा कि “महाराज, जैसी रस्सी आप तैयार करवाना चाहते हैं कृपा कर उसका नमूना भिजवा दीजिये। हम वैसी ही रस्सी फिर तैयार

लेखं सम्प्रेषयमास श्रेणिकस्तुष्टमानसः। सोपि वैदेशिकश्चात्र प्रेषणीयो मदन्तिके ॥८०॥
 न रात्रौ न दिने नैव मार्गे चोन्मार्गके न च। श्रुत्वेत्यामंत्रणं सोपि तदाभयकुमारवाक् ॥८१॥
 सन्ध्यायां शकटैकस्मिन्भागे स्थित्वाविचक्षणः। समागत्य पुरं राजगृहं भूपसभावनौ ॥८२॥
 सिंहासने प्रपञ्चेन स्थितं त्यक्त्वा नरं द्रुतम्। अंगरक्षकमध्यस्थं जनानंदप्रवीक्षणैः ॥८३॥
 ज्ञात्वा श्रीश्रेणिकं भूपं ननाम विनयान्वितः। तदा श्रीश्रेणिकेनोच्चैः परमानन्दनिर्भरात् ॥८४॥
 समालिङ्ग्य प्रवेगेन स पुत्रः कुलदीपकः। महोत्सवशतैश्चापि पत्तने प्रकटाकृतः ॥८५॥

कर सेवा में भेज देंगे।” इत्यादि कई बातें श्रेणिक ने उनसे करवायी सब का उतर उन्हें बराबर मिला। उत्तर ही न मिला किन्तु श्रेणिक को हतप्रभ भी होना पड़ा। इसलिए कि वे उन ब्राह्मणों को इस बात की सजा देना चाहते थे कि उन्होंने मेरे साथ सहानुभूति क्यों न बतलाई? पर वे सजा दे नहीं पाये। श्रेणिक को जब यह मालूम हुआ कि कोई एक विदेशी गाँव के लोगों को यह सब बातें सुझाया करता है। उन्हें उस विदेशी की बुद्धि देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और सन्तोष भी हुआ। श्रेणिक की उत्कण्ठा तब उसके देखने के लिए बढ़ी। उन्होंने एक पत्र लिखा। उसमें लिखा कि “आपके यहाँ जो एक विदेशी आकर रहा है, उसे मेरे पास भेजिये। पर साथ में उसे इतना और समझा देना कि वह न तो रात में आये और न दिन में, न सीधे रास्ते से आये और न टेढ़े-मेढ़े रास्ते से ॥७९-८१॥

अभयकुमार को पहले तो कुछ जरा विचार में पड़ना पड़ा, फिर उसे इसके लिए भी युक्ति सूझ गई और अच्छी सूझी। वह शाम के वक्त गाड़ी के एक कोने में बैठकर श्रेणिक के दरबार में पहुँचा। वहाँ वह देखता है तो सिंहासन पर एक साधारण पुरुष बैठा है। उस पर श्रेणिक नहीं है वह बड़ा आश्चर्य में पड़ गया। उसे ज्ञात हो गया कि यहाँ भी कुछ न कुछ चाल खेली गई है। बात यह थी कि श्रेणिक अंगरक्षक पुरुषों के साथ बैठ गए थे। उनकी इच्छा थी कि अभयकुमार मुझे न पहचान कर लज्जित हो। इसके बाद ही अभयकुमार ने एक बार अपनी दृष्टि राजसभा पर डाली। उसे कुछ गहरी निगाह से देखने पर जान पड़ा कि राजसभा में बैठे हुए लोगों की नजर बार-बार एक पुरुष पर पड़ रही है और वह लोगों की अपेक्षा सुन्दर और तेजस्वी है। पर आश्चर्य यह कि वह राजा अंगरक्षक लोगों में बैठा है। अभयकुमार को उसी पर कुछ सन्देह गया। तब उसके कुछ चिह्नों को देखकर उसे दृढ़ विश्वास हो गया कि यही मेरे पूज्य पिता श्रेणिक है। तब उसने जाकर उनके पाँवों में अपना सिर रख लिया। श्रेणिक ने उठाकर झट उसे छाती से लगा लिया। वर्षों बाद पिता पुत्र का मिलाप हुआ। दोनों को ही बड़ा आनन्द हुआ। इसके बाद श्रेणिक ने पुत्र प्रवेश के उपलक्ष्य में प्रजा को उत्सव मानने की आज्ञा की। खूब आनन्द-उत्सव मनाया गया। दुःखी, अनाथों को दान किया गया। पूजा-प्रभावना की गई। सच है—कुलदीपक पुत्र के लिए कौन खुशी नहीं मनाता? इसके बाद ही श्रेणिक ने अपने कुछ आदमियों को भेजकर कांची से अभयमती और वसुमित्रा इन दोनों प्रियाओं को भी बुलवा लिया। इस प्रकार प्रिया-पुत्र सहित श्रेणिक सुख से राज्य करने लगे। अब इसके आगे की

ततः काञ्चीपुरात्तेन राज्ञाहूता स्वमन्दिरम्। अभयादिमती सापि वसुमित्रा च कामिनी ॥८६॥
 एवं पुत्रादिसंयुक्तः श्रेणिकोसौ महीपतिः। यावत्सतिष्ठति सौख्यं तावद्वक्ष्ये कथान्तरम् ॥८७॥
 सिन्धुदेशे सुविख्याते विशालापत्तने शुभे। राजाभूच्चेटको धीमान्सद्दृष्टिर्जिनभक्तिभाक् ॥८८॥
 तस्य राज्ञी सुभद्राख्या सती सद्रूपमण्डिता। तयोः सारगुणोपेता बभूवुः सप्त पुत्रिकाः ॥८९॥
 तासामाद्याभवत्पुत्री पवित्रा प्रियकारिणी। तत्पुण्यं वर्ण्यते केन यत्पुत्रस्तीर्थकृद्गुणी ॥९०॥
 मृगावती द्वितीया च तृतीया सुप्रभा मता। प्रभावती चतुर्थी च चेलिनी पंचमी सुता ॥९१॥
 ज्येष्ठा षष्ठी तथाऽवद्या चन्दना सप्तमी सती। यस्या नानोपसर्गेपि स्वशीले निश्चला मतिः ॥९२॥
 स चेटको महाराजो पुत्रीस्नेहेन वीक्षितुम्। रूपाणि सर्वपुत्रीणां कारयामास पट्टके ॥९३॥
 तस्मिन्निर्मापिते पट्टे चित्रकारेण धीमता। पश्यन् रूपाणि भूपोसौ चेलिन्या रूपकोरुके ॥९४॥
 दृष्ट्वा बिन्दुं तदा चित्रकाराय कुपितो महान्। ततो नत्वा नृपं प्राह चित्रकारो विचक्षणः ॥९५॥
 देव द्वित्रिचतुर्वारान्सप्त वारान्मयापि च। प्रमृष्टोऽयं पतत्येव बिन्दुरस्मिंश्च रूपके ॥९६॥
 ईदृशं लाञ्छनं तत्र संभविष्यति मानसे। संविचार्येति भो भूप ततोसौ स्फोटितो न हि ॥९७॥
 तच्छ्रुत्वा चेटको भूपः परमानन्दनिर्भरः। ददौ तस्मिन्महादानं सतां हर्षो न निष्फलः ॥९८॥

कहानी लिखी जाती है- ॥८२-८७॥

सिन्धु देश की विशाला नगरी के राजा चेटक थे। वे बड़े बुद्धिमान्, धर्मात्मा और सम्यग्दृष्टि थे। जिन भगवान् पर उनकी बड़ी भक्ति थी। उनकी रानी का नाम सुभद्रा था। सुभद्रा बड़ी पतिव्रता और सुन्दरी थी इसके सात लड़कियाँ थीं। इनमें पहली लड़की प्रियकारिणी थी। इसके पुण्य का क्या कहना, जो इसका पुत्र संसार का महान् नेता तीर्थंकर हुआ। दूसरी मृगावती, तीसरी सुप्रभा, चौथी प्रभावती, पाँचवीं चेलना, छठी ज्येष्ठा और सातवीं चन्दना थी। इनमें अन्त में चन्दना को बड़ा उपसर्ग सहना पड़ा। उस समय इसने बड़ी वीरता से अपनी सतीधर्म की रक्षा की ॥८८-९२॥

चेटक महाराज का अपनी इन पुत्रियों पर बड़ा प्रेम था। इससे उन्होंने इन सबकी एक साथ तस्वीर बनवाई। चित्रकार बड़ा होशियार था, सो उसने उन सबका बड़ा ही सुन्दर चित्र बनाया। चित्रपट को चेटक महाराज बड़ी बारीकी के साथ देख रहे थे। देखते हुए उनकी नजर चेलना की जाँघ पर पड़ी, चेलना की जाँघ पर जैसा तिल का चिह्न था, चित्रकार ने चित्र में भी वैसा ही तिल का चिह्न बना दिया था सो चेटक महाराज ने ज्यों ही उस तिल को देखा उन्हें चित्रकार पर बड़ा गुस्सा आया। उन्होंने उसी समय उसे बुलाकर पूछा कि-तुझे इस तिल का हाल कैसे जान पड़ा। महाराज की क्रोध भरी आँखें देखकर वह बड़ा घबराया। उसने हाथ जोड़कर कहा-राजाधिराज इस तिल को मैंने कोई छह सात बार मिटाया, पर मैं ज्यों ही चित्र के पास लिखने को कलम ले जाता त्यों ही उसमें से रंग की बूँद इसी जगह पड़ जाती। तब मेरे मन में दृढ़ विश्वास हो गया कि ऐसा चिह्न राजकुमारी चेलना के होना ही चाहिए और यही कारण है कि मैंने फिर उसे न मिटाया। यह

तदासौ नृपतिः श्रीमान्ग्रीत्या देवार्चनक्षणे। तत्पट्टकं प्रसार्योच्चैर्जिनबिम्बप्रसन्निधौ ॥९९॥
 पूजां श्रीमज्जिनेन्द्राणां सर्वकल्याणदायिनीम्। करोत्येव महाभक्त्या भव्यचेतोनुराजिनीम् ॥१००॥
 एकदा चेटकः सोपि केनचित्कारणेन च। स्वसैन्येन समागत्य राजा राजगृहं पुरम् ॥१०१॥
 बाह्योद्याने स्थितः स्नानधौतवस्त्रपुरस्सरम्। श्रीमज्जिनान्समभ्यर्च्य तत्र स्थापितपट्टके ॥१०२॥
 क्षिप्तवान्कुसुमादिं च तद्दृष्ट्वा श्रेणिकः प्रभुः। तत्पार्श्ववर्त्तिनः प्राह किमेतदिति ते जगुः ॥१०३॥
 राज्ञोस्य पुत्रिकाः सप्त लिखिताश्चात्र पट्टके। तासु पुत्रीषु चतस्राः परिणीता गुणोज्ज्वलाः ॥१०४॥
 द्वे कन्ये चेलिनी ज्येष्ठे संजाते नवयौवने। चन्दना सप्तमी बाला तिस्रः सन्ति गृहे पितुः ॥१०५॥
 तच्छ्रुत्वा श्रेणिको राजा तयोरासक्तमानसः। भूत्वा स्वमंत्रिणो वार्त्तां जगौ कन्याद्वयेच्छया ॥१०६॥
 ततस्ते मंत्रिणश्चापि नत्वाभयकुमारकम्। प्राहश्चेटकभूपस्य कन्यायुग्मं मनोहरम् ॥१०७॥

सुनकर चेटक महाराज बड़े खुश हुए। उन्होंने फिर चित्रकार को बहुत पारितोषिक दिया। सच है बड़े पुरुषों का खुश होना निष्फल नहीं जाता ॥९३-९८॥

अब से चेटक महाराज भगवान् की पूजन करते समय पहले इस चित्रपट को खोलकर भगवान् की प्रतिमा के पास ही रख लेते हैं और फिर बड़ी भक्ति के साथ जिनपूजा करते रहते हैं। जिन पूजा सब सुखों की देने वाली और भव्यजनों के मन को आनन्दित करने वाली है ॥९९-१००॥

एक बार चेटक महाराज किसी खास कारण वश अपनी सेना को साथ लिए राजगृह आए। वे शहर बाहर बगीचे में ठहरे। प्रातःकाल शौच, मुख मार्जनादि आवश्यक क्रियाओं से निपट उन्होंने स्नान किया और निर्मल वस्त्र पहनकर भगवान् की विधिपूर्वक पूजा की। रोज के माफिक आज भी चेटक महाराज ने अपनी राजकुमारियों के उस चित्रपट को पूजन करते समय अपने पास रख लिया था और पूजन के अन्त में उस पर फूल वगैरह डाल दिये थे ॥१०१-१०३॥

इसी समय श्रेणिक महाराज भगवान् के दर्शन करने को आए। उन्होंने इस चित्रपट को देखकर पास खड़े हुए लोगों से पूछा—यह किनका चित्रपट है? उन लोगों ने उत्तर दिया—राजराजेश्वर, ये जो विशाला के चेटक महाराज आये हैं, उनकी लड़कियों का यह चित्रपट है। इनमें चार लड़कियों का तो ब्याह हो चुका है और चेलना तथा ज्येष्ठा ये दो लड़कियाँ ब्याह योग्य हैं। सातवीं चन्दना अभी बिल्कुल बालिका है। ये तीनों ही इस समय विशाला में हैं यह सुन श्रेणिक महाराज चेलना और ज्येष्ठ पर मोहित हो गये। इन्होंने महल पर आकर अपने मन की बात मंत्रियों से कही। मंत्रियों ने अभयकुमार से कहा—आपके पिताजी ने चेटक महाराज से इनकी दो सुन्दर लड़कियों के लिए मँगनी की थी, पर उन्होंने अपने महाराज की अधिक उम्र देख उन्हें अपनी राजकुमारियों के देने से इंकार कर दिया। अब तुम बतलाओ कि क्या उपाय किया जाये जिससे काम पूरा पड़ ही जाये ॥१०४-१०५॥

बुद्धिमान् अभयकुमार मंत्रियों के वचन सुनकर बोला—आप इस विषय की चिन्ता न करें जब तक कि सब कामों को करने वाला मैं मौजूद हूँ। यह कहकर अभयकुमार ने अपने पिता का एक बहुत

पित्रा ते याचितः सोपि न दत्ते गतयौवनात्। ध्रुवं कार्यमिदं चापि कर्तव्यं क्रियतेऽत्र किम् ॥१०८॥
 श्रुत्वाभयकुमारोसौ मंत्रिवाक्यं विचक्षणः। नैव चिन्तासमर्थोहं सर्वकार्यविधायकः ॥१०९॥
 इत्युक्त्वा स्वपितुर्दिव्यं रूपमालिख्य पट्टके। स्वयं वणिग्वरो भूत्वा वाणिज्येन प्रवेगतः ॥११०॥
 विशालाख्यां पुरीं गत्वा महोपायेन पट्टकम्। कन्ययोः सम्प्रदर्शयोच्चैस्तच्चित्तं श्रेणिकोपरि ॥१११॥
 कृत्वा सुरंगिकां मार्गे गृहीत्वा ते सुकन्यके। संचचाल तदा सा च चेलिनी धूर्तमानसा ॥११२॥
 त्यक्त्वाभरणव्याजेन ज्येष्ठां सद्रूपशालिनीम्। स्वयं तेन समं प्राप्य पुरं राजगृहं मुदा ॥११३॥
 श्रेणिकस्य महीभर्तुर्महोत्सवशतैर्द्रुतम्। राज्ञी शिरोमणिर्जाता स्वपुण्यात्प्राणवल्लभा ॥११४॥
 अथासौ श्रेणिको राजा विष्णुभक्तोतिमुग्धधीः। चेलिनी श्रीजिनेन्द्रोक्तसारधर्मे रता सती ॥११५॥
 ततस्तयोर्द्वयोर्नित्यं स्वस्वधर्मप्रशंसने। विवादः संभवत्येव तथान्यदिवसे प्रभुः ॥११६॥
 श्रेणिकश्चेलिनीं प्राह भो प्रिये कुलयोषिताम्। पतिरेव भवेद्देवस्ततो मे वचनाद्भुवम् ॥११७॥
 भोजनं विष्णुभक्तानां सद्गुरूणां प्रदीयते। त्वया सद्दिनयेनेति तच्छ्रुत्वा चेलिनी सती ॥११८॥
 ददामि भोजनं तेषामित्युक्त्वाहूय मण्डपे। गौरवात्स्थापयामास सर्वाभ्यागवतान्मुदा ॥११९॥

सुन्दर चित्र तैयार किया और उसे लेकर साहूकार के वेष में आप विशाला पहुँचा। किसी उपाय से उसने वह चित्रपट दोनों राजकुमारियों को दिखलाया। वह इतना बढ़िया बना था कि उसे यदि एक बार देवांगनाएँ देख पाती तो उनसे भी अपने आपे में न रहा जाता तब ये दोनों कुमारियाँ उसे देखकर मुग्ध हो जाएँ, इसमें आश्चर्य क्या? उन दोनों का श्रेणिक महाराज पर मुग्ध देख अभयकुमार उन्हें सुरंग के रास्ते से राजगृह ले जाने लगा। चेलना बड़ी धूर्त थी। उसे स्वयं तो जाना पसन्द था, पर वह ज्येष्ठा को ले जाना न चाहती थी। सो जब ये थोड़ी ही दूर आई होंगी कि चेलना ने ज्येष्ठा से कहा—हाँ, बहिन मैं तो अपने सब गहने—दागी महल में ही छोड़ आई हूँ, तू जाकर उन्हें ले—आ न? तब तक मैं यही खड़ी हूँ बेचारी भोली—भाली ज्येष्ठा इसके झाँसे में आकर चली गई वह आँखों की ओट हुई होगी कि चेलना ने वहाँ से रवाना होकर अभयकुमार के साथ राजगृह आ गई। फिर बड़े उत्सव के साथ यहाँ इसका श्रेणिक महाराज के साथ ब्याह हो गया। पुण्य के उदय से श्रेणिक की सब रानियों में चेलिनी के ही भाग्य का सितारा चमका—पट्टरानी यही हुई। यह बात ऊपर लिखी जा चुकी है—श्रेणिक एक संन्यासी के उपदेश से वैष्णवधर्मी हो गए थे और तब से वे इसी धर्म को पालते थे। महारानी चेलना जैनी थी। जिनधर्म पर जन्म से ही उसकी श्रद्धा थी। इन दो धर्मों को पालने वाले पति—पत्नी का अपने—अपने धर्म की उच्चता बाबत रोज—रोज थोड़ा बहुत वार्तालाप हुआ करता था। पर वह बड़ी शान्ति से। एक दिन श्रेणिक ने चेलना से कहा—प्रिये, उच्च घराने की सुशील स्त्रियों का देव तो पति है तब तुम्हें मैं जो कहूँ वह करना चाहिए। मेरी इच्छा है कि एक बार तुम इन विष्णुभक्त सच्चे गुरुओं को भोजन दो। सुनकर महारानी चेलना ने बड़ी नम्रता के साथ कहा—अच्छा नाथ, दूँगी ॥१०६—११८॥

इसके कुछ दिनों बाद चेलना ने कुछ भागवत् साधुओं का निमंत्रण किया और बड़े गौरव के साथ

तत्र ते कपटोपेताः शठा ध्यानेन संस्थिताः। पृष्ठास्तया भवन्तस्तु प्रकुर्वन्ति किमत्र भो ॥१२०॥
 तदाकर्ण्य जगुस्तेपि त्यक्त्वा देहं मलैर्भृतम्। जीवं विष्णुपदं नीत्वा तिष्ठामो देवि सौख्यतः ॥१२१॥
 ततस्तया महादेव्या चेलिन्या सोपि मण्डपः। प्रज्वालितोग्निना नष्टा शीघ्रं ते वायसा यथा ॥१२२॥
 राज्ञा रुष्टेन सा प्रोक्ता भक्तिर्नास्ति यदि ध्रुवम्। किं ते मारयितुं युक्तं कष्टादेतांस्तपस्विनः ॥१२३॥
 तयोक्तं देव भो त्यक्त्वा कुत्सितं स्ववपुर्दुतम्। एते विष्णुपदं प्राप्ताः सारसौख्यसमन्वितम् ॥१२४॥
 नित्यं तत्रैव तिष्ठन्ति किमत्रागमनेन च। इति ज्ञात्वोपकाराय मयेदं निर्मितं प्रभो ॥१२५॥
 अस्थैव मम वाक्यस्य निश्चयार्थं महीपते। सदृष्टान्तकथां वक्ष्ये श्रूयताम् परमादरात् ॥१२६॥
 वत्सदेशे सुविख्याते कौशाम्बीपत्तने प्रभुः। प्रजापालो महाराज्यं करोति स्म स्वलीलया ॥१२७॥
 श्रेष्ठीसागरदत्ताख्यो वसुमत्यास्त्रिया युतः। तत्रैव च समुद्रादिदत्तश्रेष्ठी परोभवत् ॥१२८॥

उन्हें अपने यहाँ बुलाया। आकर वे लोग अपना ढोंग दिखलाने के लिए कपट, मायाचारी से ईश्वराराधन करने को बैठे। उस समय चेलना ने उनसे पूछा—आप लोग क्या करते हैं? उत्तर में उन्होंने कहा—देवी, हम लोग मलमूत्रादि अपवित्र वस्तुओं से भरे इस शरीर को छोड़कर हम अपनी आत्मा को विष्णु अवस्था में प्राप्त कर स्वानुभव का सुख भोगते हैं ॥११९-१२१॥

सुनकर चेलना ने उस मंडप में, जिसमें कि सब साधु ध्यान करने को बैठे थे, आग लगवा दी। आग लगते ही वे सब भाग खड़े हुए। यह देख श्रेणिक ने बड़े क्रोध के साथ चेलना से कहा—आज तुमने साधुओं के साथ अनर्थ किया। यदि तुम्हारी उन पर भक्ति नहीं थी, तो क्या उसका यह अर्थ है कि उन्हें जान से मार डालना? बताओ उन्होंने तुम्हारा क्या अपराध किया जिससे तुम उनके जीवन की ही प्यासी हो उठी? ॥१२२-१२३॥

रानी बोली—नाथ, मैंने तो कोई बुरा काम नहीं किया और जो किया वह उन्हीं के कहे अनुसार उनके लिए सुख का कारण था। मैंने तो केवल परोपकार बुद्धि से ऐसा किया था। जब वे लोग ध्यान करने को बैठे तब मैंने उनसे पूछा कि आप लोग क्या करते हैं, तब उन्होंने मुझे कहा कि हम अपवित्र शरीर को छोड़कर उत्तम सुखमय विष्णुपद को प्राप्त करते हैं। तब मैंने सोचा कि—अहो, ये जब शरीर छोड़कर विष्णुपद प्राप्त करते हैं तब तो बहुत ही अच्छा है और इससे यह और उत्तम होगा कि यदि ये निरन्तर विष्णु ही बने रहें। संसार में बार-बार आने-जाने का इनके पचड़ा क्यों? यह विचार कर वे निरन्तर विष्णुपद में रहकर सुख भोगें इस परोपकार बुद्धि से मैंने मण्डप में आग लगवा दी। तब आप ही विचार कर बतलाइए कि इसमें मैंने सिवा परोपकार के कौन बुरा काम किया? और सुनिए, मेरे वचनों पर आपको विश्वास हो, इसके लिए मैं एक कथा आपको सुना दूँ ॥१२४-१२६॥

“जिस समय की यह कथा है, उस समय वत्सदेश की राजधानी कौशाम्बी के राजा प्रजापाल थे। वे अपना राज्यशासन नीति के साथ करते हुए सुख से समय बिताते थे। कौशाम्बी में दो सेठ रहते थे। उनके नाम थे सागरदत्त और समुद्रदत्त। दोनों सेठों में परस्पर बहुत प्रेम था। उनका प्रेम सदा ऐसा

भार्या समुद्रदत्ताख्या श्रेष्ठिनश्च तयोर्द्वयोः। महास्नेहवशादुच्चैर्वाचा बन्धोभवद्ध्रुवम् ॥१२९॥
 आवयोः पुत्रपुत्र्यौ यौ संजायेते परस्परम्। तयोर्विवाहः कर्त्तव्यो यतः प्रीतिर्भवेत्सदा ॥१३०॥
 ततः सागरदत्तस्य वसुमत्यां सुतो जनिः। वसुमित्राभिधः केन कर्मणासौ वशीकृतः ॥१३१॥
 रात्रौ दिव्यनरो भूत्वा दिने सर्पो भयानकः। तिष्ठति स्म गृहे चेति विचित्रा संसृतेः स्थितिः ॥१३२॥
 तथा समुद्रदत्तस्य नागदत्ता सुताभवत्। तस्यां समुद्रदत्तायां रूपलावण्यमण्डिता ॥१३३॥
 तेनासौ वसुमित्रेण परिणीता गुणोज्ज्वला। नैव वाचा चलत्वं च सतां कष्टशतैरपि ॥१३४॥
 ततश्च वसुमित्रोऽसौ निशायां निजलीलया। धृत्वा पिट्टारके नित्यं कष्टं सर्पशरीरकम् ॥१३५॥
 भूत्वा दिव्यनरो नागदत्तया सह सर्वदा। भुङ्क्ते भोगान्मनोभीष्टान्विचित्रं कर्मचेष्टितम् ॥१३६॥
 एकदा यौवनाक्रान्तां नागदत्तां विलोक्य च। जगौ समुद्रदत्ता सा पुत्रीस्नेहेन दुःखिता ॥१३७॥
 हा विधेश्चेष्टितं कष्टं कीदृशी मे सुतोत्तमा। वरश्च कीदृशो जातो भीतिकारी भुजङ्गमः ॥१३८॥
 तच्छ्रुत्वा नागदत्ता सा भो मातर्मा विसूरय। समुद्धीर्येति वृत्तान्तं स्वभर्तुः संजगाद च ॥१३९॥
 तदाकर्ण्य समुद्रादिदत्ता गत्वा सुतागृहम्। रात्रौ पिट्टारके मुक्त्वा सर्पदेहं तदा द्रुतम् ॥१४०॥

ही दृढ़ बना रहे, इसके लिए उन्होंने परस्पर में एक शर्त रखी कि—“मेरे यदि पुत्री हुई तो मैं उसका ब्याह तुम्हारे लड़के के साथ कर दूँगा और इसी तरह मेरे पुत्र हुआ तो तुम्हें अपनी लड़की का ब्याह उसके साथ कर देना पड़ेगा ॥१२७-१३०॥

दोनों ने उक्त शर्त स्वीकार की। उसके कुछ दिनों बाद सागरदत्त के घर पुत्र जन्म हुआ। उसका नाम वसुमित्र रखा। पर उसमें एक बड़े आश्चर्य की बात थी। वह यह कि—वसुमित्र न जाने किस कर्म के उदय से रात के समय तो एक दिव्य मनुष्य होकर रहता और दिन में एक भयानक सर्प ॥१३१-१३२॥

उधर समुद्रदत्त के घर कन्या हुई उसका नाम रखा गया नागदत्ता। वह बड़ी खूबसूरत सुन्दरी थी। उसके पिता ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उसका ब्याह वसुमित्र के साथ कर दिया। सच है—

नैव वाचा चलत्वं स्यात्सतां कष्टशतैरपि ॥१३३-१३४॥

सत्पुरुष सैकड़ों कष्ट सह लेते हैं, पर अपनी प्रतिज्ञा से कभी विचलित नहीं होते। वसुमित्र का ब्याह हो गया। वह अब प्रतिदिन दिन में तो सर्प बनकर एक पिट्टारे में रहता और रात में एक दिव्य पुरुष होकर अपनी प्रिया के साथ सुखोपभोग करता। सचमुच संसार की विचित्र ही स्थिति होती है। इसी तरह उसके कई दिन बीत गए। एक दिन नागदत्ता की माता अपनी पुत्री को एक ओर तो यौवन अवस्था में पदार्पण करती और दूसरी ओर उसके विपरीत भाग्य को देखकर दुःखी होकर बोली—हाय! दैव की कैसी विडम्बना है, जो कहाँ तो देवकुमारी सरीखी सुन्दरी मेरी पुत्री और कैसा उसका अभाग्य जो उसे पति मिला एक भयंकर सर्प! उसकी दुःख भरी आह को नागदत्ता ने सुन लिया। वह दौड़ी आकर अपनी माँ से बोली—माँ, इसके लिए आप क्यों दुःख करती है। मेरा जब भाग्य ही ऐसा है, तब उसके लिए दुःख करना व्यर्थ है और अभी मुझे विश्वास है कि मेरे स्वामी का

धृत्वा मनुष्यसद्रूपं निर्गच्छन्तं विलोक्य तम् । सा प्रच्छन्नं तदा भस्मीचक्रे पिट्टारकं सती ॥१४१॥
 सन्दाहिते तथा तस्मिन्वसुमित्रो गुणोज्ज्वलः । भुञ्जानो विविधान्भोगान्सदासौ पुरुषः स्थितः ॥१४२॥
 तथैते देव तिष्ठन्ति विष्णुलोके निरन्तरम् । एतदर्थं मयारब्धो देहदाहस्तपस्विनाम् ॥१४३॥
 तन्निशम्य महीनाथः श्रेणिकश्चेलिनीवचः । समर्थो नोत्तरं दातुं कोपान्मौनेन संस्थितः ॥१४४॥
 अथैकदा नराधीशो गतः पापद्विहितवे । तत्रातापेन योगस्थं यशोधरमहामुनिम् ॥१४५॥
 समालोक्य महाकोपान्ममेवं विघ्नकारिणम् । मारयामीति संचिन्त्य मुक्तवान्दुष्टकुक्कुरान् ॥१४६॥
 गत्वा पञ्चशतान्युच्चैः कुक्कुरास्तेपि निष्ठुराः । यशोधरमुनेस्तस्य तपो माहात्म्यतो द्रुतम् ॥१४७॥
 कृत्वा प्रदक्षिणां पाद-मूले तस्थुः सुभक्तितः । क्रोधान्धेन पुनस्तेन बाणा मुक्ताः सुदारुणाः ॥१४८॥
 शरास्तेपि बभूवुश्च पुष्पमालाः सुनिर्मलाः । प्रभावो मुनिनाथस्य महान्केनात्र वर्ण्यते ॥१४९॥
 तस्मिन्काले महीपालः सप्तमं नरकं प्रति । त्रयस्त्रिंशत्समुद्रायुर्बन्धं चक्रे कुक्कष्टदम् ॥१५०॥
 ततः प्रभावमालोक्य मुनेः पादाम्बुजद्वयम् । प्रणम्य परया भक्त्या त्यक्त्वा दुष्टाशयं नृपः ॥१५१॥

इस दशा से उद्धार हो सकता है। इसके बाद नागदत्ता ने अपनी माँ को स्वामी के उद्धार के सम्बन्ध की बात समझा दी। सदा के नियमानुसार आज भी रात के समय वसुमित्र अपना सर्प-शरीर छोड़कर मनुष्य रूप में आया और अपने शय्या-भवन में पहुँचा। इधर समुद्रदत्ता छुपे हुए आकर वसुदत्त के पिटारे को वहाँ से उठा ले-आई और उसी समय उसने उसे जला डाला। तब से वसुमित्र मनुष्य रूप में ही अपनी प्रिया के साथ सुख भोगता हुआ अपना समय आनंद से बिताने लगा। नाथ, उसी तरह ये साधु भी निरन्तर विष्णु लोक में रहकर सुख भोगें यह मेरी इच्छा थी इसलिए मैंने वैसा किया था। महारानी चेलना की कथा सुनकर श्रेणिक उत्तर तो कुछ नहीं दे सके, पर वे उस पर बहुत गुस्सा हुए और उपयुक्त समय न देखकर वे अपने क्रोध को उस समय दबा गए ॥१३५-१४४॥

एक दिन श्रेणिक शिकार के लिए गए हुए थे। उन्होंने वन में यशोधर मुनिराज को देखा। वे उस समय आतप योग धारण किए हुए थे। श्रेणिक ने उन्हें शिकार के लिए विघ्नरूप समझ कर मारने का विचार किया और बड़े गुस्से में आकर अपने क्रूर शिकारी कुत्तों को उन पर छोड़ दिया। कुत्ते बड़ी निर्दयता के साथ मुनि के खाने को झपटे। पर मुनिराज को तपस्या के प्रभाव से वे उन्हें कुछ कष्ट न पहुँचा सके। बल्कि उनकी प्रदक्षिणा देकर उनके पाँवों के पास खड़े रह गए। यह देख श्रेणिक को और भी क्रोध आया। उन्होंने क्रोधान्ध होकर मुनि पर बाण चलाना आरम्भ किया। पर यह कैसा आश्चर्य जो बाणों के द्वारा उन्हें कुछ क्षति न पहुँचा कर वे ऐसे जान पड़े मानों किसी ने उन पर फूलों की वर्षा की है। सच, बात यह है कि तपस्वियों का प्रभाव कौन कह सकता है? श्रेणिक ने उन मुनि हिंसारूप तीव्र परिणामों द्वारा उस समय सातवें नरक की आयु का बन्ध किया, जिसकी स्थिति तैंतीस सागर की है ॥१४५-१५०॥

पुण्येन पूर्णयोगस्य यशोधरमहामुनेः। वाक्यात्तत्त्वं जिनन्द्रोक्तं सुरेन्द्राद्यैः समर्चितम् ॥१५२॥
 संश्रुत्वोपशमं सारसम्यक्त्वं स गृहीतवान्। तदायुश्चतुरशीतिगुणं वर्षसहस्रकम् ॥१५३॥
 संचक्रे प्रथमे शीघ्रं नरके प्रस्तरादिमे। किं न स्याद्भव्यमुख्यानां शुभं सद्दर्शनागमे ॥१५४॥
 ततः पादान्तिके चित्र-गुप्तनाममहामुनेः। क्षायोपशमकं प्राप्य सम्यक्त्वं भक्तिनिर्भरः ॥१५५॥
 वर्द्धमानजिनेन्द्रस्य पादमूले जगद्गुरोः। गृहीत्वा शुद्धसम्यक्त्वं क्षायिकं मुक्तिदायकम् ॥१५६॥
 स्वीचक्रे तीर्थकृन्नामत्रैलोक्येशैः समर्चितम्। तस्माच्छ्रीश्रेणिको राजा तीर्थेशः संभविष्यति ॥१५७॥
 ततः सम्यक्त्वसद्रत्नं स्वर्गमोक्षसुखप्रदम्। अन्यैश्चापि महाभव्यैः पालनीयं जगद्धितम् ॥१५८॥
 यद्वेवेन्द्रनेन्द्रशर्मजनकं दुःखौघनिर्नाशकंसम्यक्त्वं शिवसौख्यबीजमतुलं विद्वज्जनैः सेवितम्।
 तच्छ्रीमज्जिनदेवभाषितमहातत्त्वार्थसारे रुचिः प्रोक्तं श्रीश्रुतसागरैर्मुनिवरैर्भव्याः श्रयन्तु श्रिये ॥१५९॥
 इति कथाकोशे शुद्धसम्यक्त्वप्राप्तमहामण्डलेश्वरश्रीश्रेणिकमहाराजाख्यानं समाप्तम्।

इन सब अलौकिक घटनाओं को देखकर श्रेणिक का पत्थर के समान कठोर हृदय फूल सा कोमल हो गया, उनके हृदय की सब दुष्टता निकल कर उसमें मुनि के प्रति पूज्यभाव पैदा हो गया, वे मुनिराज के पास गए और भक्ति से मुनि के चरणों को नमस्कार किया। यशोधर मुनिराज ने श्रेणिक के हित के लिए इस समय को उपयुक्त समझ उन्हें अहिंसामयी पवित्र जिनशासन का उपदेश दिया। उसका श्रेणिक के हृदय पर बहुत असर पड़ा। उनके परिणामों में विलक्षण परिवर्तन हो गया। उन्होंने अपने कृत कर्म पर अत्यन्त पश्चाताप हुआ। मुनिराज के उपदेशानुसार उन्होंने सम्यक्त्व ग्रहण किया। उसके प्रभाव से, उन्होंने जो सातवें नरक की आयु का बन्ध किया था, वह उसी समय घटकर पहले नरक की रह गयी। यहाँ की स्थिति चौरासी हजार वर्षों की है। ठीक है सम्यग्दर्शन के प्रभाव से भव्यपुरुष को क्या प्राप्त नहीं होता ॥१५१-१५४॥

इसके बाद श्रेणिक ने श्री चित्रगुप्त मुनिराज के पास क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया और अन्त में भगवान् वर्द्धमान स्वामी के द्वारा शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व, जो कि मोक्ष का कारण है, प्राप्त कर पूज्य तीर्थकर नाम प्रकृति का बन्ध किया। श्रेणिक महाराज अब तीर्थकर होकर निर्वाण लाभ करेंगे ॥१५५-१५७॥

इसलिए भव्यजनों इस स्वर्ग-मोक्ष के सुख देने वाले तथा संसार का हित करने वाले सम्यग्दर्शन रूप रत्न द्वारा अपने को भूषित करना चाहिए। यह सम्यग्दर्शन रूप रत्न-इन्द्र, चक्रवर्ती आदि के सुख का देने वाला, दुःखों का नाश करने वाला और मोक्ष का प्राप्त कराने वाला है। विद्वज्जन आत्महित के लिए इसी को धारण करते हैं। उस सम्यग्दर्शन का स्वरूप श्रुतसागर आदि मुनिराजों ने कहा। जिनभगवान् के कहे हुए तत्त्वों का श्रद्धान करना ऐसा विश्वास करना कि भगवान् ने जैसा कहा वही सत्यार्थ है। तब आप लोग भी इस सम्यग्दर्शन को ग्रहण कर आत्म-हित करें, यह मेरी भावना है ॥१५८-१५९॥

१०८. रात्रिभुक्तित्यागफलाख्यानम्

प्रणम्योच्चैर्जिनं देवं भारतीं सद्गुरुं क्रमात्। रात्रिभुक्तिपरित्याग-फलं वक्ष्ये गुणोज्ज्वलम् ॥१॥
 निशाभुक्तिं त्यजन्त्येव ये भव्या धर्महेतवे। तेषां सतां महासौख्यं भवेल्लोकद्वये सदा ॥२॥
 कीर्त्तिः कान्तिर्महाशान्तिः सम्पदा विविधाः सदा। दीर्घायुः स्यात्सुखोपेतं रात्रिभोजनवर्जनात् ॥३॥
 दारिद्र्यपीडिता नित्यमन्धाः पुत्रादिवर्जिताः। महारोगशतक्रान्ताः स्युर्नरा निशिभोजनात् ॥४॥
 पतत्कीटपतंगादे-र्भक्षणात्रिशिभोजनम्। त्याज्यं पापप्रदं सद्भिर्मांसव्रतविशुद्धये ॥५॥
 दिवसस्य मुखे चान्ते मुक्त्वा द्वे द्वे सुधार्मिकैः। घटिके भोजनं कार्यं श्रावकाचारचञ्चुभिः ॥६॥

उक्तं च श्रीसमन्तभद्रपादैः—

अह्नेमुखेऽवसाने च यो द्वे द्वे घटिके त्यजेत्। निशाभोजनदोषज्ञोऽश्नात्यसौ पुण्यभाजनम्॥
 ताम्बूलं सुजलं किञ्चिदौषधं दोषवर्जितम्। मुक्त्वा कष्टेऽपि सन्त्याज्यं रात्रौ सद्भिः फलादिकम् ॥७॥
 ये त्यजन्ति सदाहारं रात्रौ भव्याश्चतुर्विधम्। स्यात्षण्मासोपवासोत्थं तेषां संवत्सरे शुभम् ॥८॥
 अथ श्रीजिनसूत्रोक्तां तद्दृष्टान्तकथां ब्रूवे। श्रीमत्प्रीतिकरस्योच्चैः संक्षेपेण सतां श्रिये ॥९॥

१०८. रात्रिभोजन त्याग कथा

जिन भगवान्, जिनवाणी और गुरुओं को नमस्कार कर रात्रि भोजन का त्याग करने से जिसने फल प्राप्त किया उसकी कथा लिखी जाती है ॥१॥

जो लोग धर्मरक्षा के लिए, रात्रिभोजन का त्याग करते हैं, वे दोनों लोकों में सुखी होते हैं, यशस्वी होते हैं, दीर्घायु होते हैं, कान्तिमान होते हैं और उन्हें सब सम्पदाएँ तथा शान्ति मिलती है, और जो लोग रात में भोजन करने वाले हैं, वे दरिद्री होते हैं, जन्मांध होते हैं, अनेक रोग और व्याधियाँ उन्हें सदा सताए रहती हैं, उनके संतान नहीं होती। रात में भोजन करने से छोटे जीव जन्तु नहीं दिखाई पड़ते। वे खाने में आ जाते हैं। उससे बड़ा पापबन्ध होता है। जीवहिंसा का पाप लगता है। मांस का दोष लगता है। इसलिए रात्रिभोजन का छोड़ना सबके लिए हितकारी है और खासकर उन लोगों को तो छोड़ना ही चाहिए जो मांस नहीं खाते। ऐसे धर्मात्मा श्रावकों को दिन निकले दो घड़ी बाद सबेरे और दो घड़ी दिन बाकी रहे तब शाम को भोजन वगैरह से निवृत्त हो जाना चाहिए। समन्तभद्रस्वामी का भी ऐसा ही मत है—“रात्रि भोजन का त्याग करने वाले को सबेरे शाम को आरम्भ और अन्त में दो-दो घड़ी छोड़कर भोजन करना चाहिए।” जो नैष्ठिक श्रावक नहीं हैं उनके लिए पान, सुपारी, इलायची, जल और पवित्र औषधि आदि का सेवन विशेष दोष के कारण नहीं है, इन्हें छोड़कर और अन्न की चीजें या मिठाई, फलादिक ये सब कष्ट पड़ने पर भी कभी न खाना चाहिए। जो भव्य जीवन भर के लिए चारों प्रकार के आहार का रात में त्याग कर देते हैं उन्हें वर्ष भर में छह माह के उपवास का फल होता है। रात्रिभोजन को त्याग करने से प्रीतिकर कुमार को फल प्राप्त हुआ था उसकी विस्तृत कथा अन्य ग्रन्थों में प्रसिद्ध है। यहाँ उसका सार लिखा जाता है—॥२-९॥